**ओ३म्**

**‘एक विस्मृत वैदिक ऋषि-भक्त शास्त्रार्थ महारथीः पं. गणपति शर्मा’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

प्राचीनकाल में धर्मिक विषयों में भ्रान्ति दूर करने वा सत्यासत्य के निर्णयार्थ शास्त्रार्थ किया जाता था। सृष्टि के आरम्भ से यह मान्यता चली आ रही प्रतीत होती है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण सम्पूर्णतया सत्य विचारों, मान्यताओं एवं सिद्धान्तों के ग्रन्थ हैं और वेदानुकूल सभी शास्त्रों की बातें भी स्वीकार्य, मान्य एवं पालन करने योग्य हैं। ऐसा लगता है कि इस मान्यता का महाभारतकाल तक पालन होता रहा। बाद में महाभारत के युद्ध और कालान्तर में अविद्या व अज्ञान के अन्धकार के छा जाने के कारण लोगों की बुद्धि भ्रमित हो गई और अनेकानेक वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध ग्रन्थों का निर्माण हुआ जिसमें जहा बौद्ध व जैन सम्प्रदाय के ग्रन्थ हैं वहीं हमारे प्रायः सभी पुराण संज्ञक ग्रन्थ भी सम्मिलित हैं। इसी कारण से महर्षि दयानन्द को सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ में ग्यारह से चैदह तक क चार समुल्लासों में सत्यासत्य के उद्देश्य वा निर्णयार्थ भारतीय और विदशी मतों की समीक्षा व समालोचना करनी पड़ी। शास्त्रार्थ में पक्षी व विपक्षी तर्क और युक्तियों सहित शास्त्र प्रमाण का सहारा लेते हैं जिससे सत्य प्रकट हो जाता है। इस शास्त्रार्थ परम्परा को महर्षि दयानन्द ने अपने समय में प्रचलित कर इसका पुनर्रुद्धार किया। उनका नवम्बर, 1869 में काशी में मूर्तिपूजा की वैदिकता पर किया गया शास्त्रार्थ विगत 2500 वर्षों में हुए शास्त्रार्थें में एक प्रमुख शास्त्रार्थ है। इससे पूर्व अद्वैत मत के आचार्य स्वामी शंकराचार्य जी ने जैन मत के आचार्यों से **‘‘ईश्वर है या नहीं अथवा मूर्तिपूजा”** पर ही शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित किया था। महर्षि दयानन्द के अनुयायियों ने उनके बाद सत्यासत्य के निर्णयायर्थ शास्त्रार्थ परम्परा को जारी रखा। न केवल प्रतिपक्षियों अपितु आर्यसमाज के विद्वानों के अनेक अवसरों पर अनेक जटिल व भिन्न-भिन्न विचारों के कारण भी शास्त्रार्थ हुए जिनके विषय **‘‘वृक्षों में जीव है या नहीं और काल-अकाल मृत्यु”** आदि रहे। ऋषि दयानन्द द्वारा पुनः प्रवर्तित इस शास्त्रार्थ परम्परा का पं. गणपति शर्मा जी ने भी अपने जीवन काल में निर्वहन किया। अपने जीवन में शास्त्रार्थ कर पं. गणपति शर्मा जी ने यह सिद्ध किया कि एक ही विषय में भिन्न-2 मत, विचार व सिद्धान्त होने पर उनके आचार्यों द्वारा परस्पर प्रीतिपूर्वक शास्त्रार्थ कर उसका समाधान किया जा सकता है। सत्य के निर्णय का इससे अधिक उचित व प्रामाणिक अन्य कोई उपाय नहीं है।

पं. गणपति शर्मा जी का जन्म राजस्थान के चुरु नामक नगर में सन् 1873 में श्री भानीराम वैद्य जी के यहां हुआ था। आप पाराशर गोत्रीय पारीक ब्राह्मण थे। आपके पिता ईश्वर के सच्चे भक्त व उपासक थे। पिता का यही गुण उनके पुत्र गणपति शर्मा में भी सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। आपकी शिक्षा कानपुर व काशी आदि स्थानों पर हुई। अपने जीवन के प्रथम 22 वर्षों में आपने संस्कृत व्याकरण एवं दर्शन ग्रन्थों का अध्ययम किया। शिक्षा पूरी कर आप अपने पितृ नगर चुरु आ गये। राजस्थान के अनेक नगरों में स्वामी दयानन्द के शिष्य पं. कालूराम जोशी ने वैदिक धर्म प्रचार की धूम मचा रखी थी। आप उनके सम्पर्क में आये और उनके विचारों व उपदेश आदि से प्रभावित होकर ऋषि दयानन्द के भक्त और आर्यसमाज के सदस्य बन गये। आर्यसमाजी बनकर पं. गणपति शर्मा जी ने वैदिक धर्म से संबधित आर्यसमाज के साहित्य का अध्ययन व मनन किया और आर्यसमाज का प्रचार आरम्भ कर दिया।

सन् 1905 में गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार शिक्षा संस्थान का वार्षिक उत्सव हुआ जिसमें आप सम्मिलित हुए। उन दिनों गुरुकुल कांगड़ी पूरे देश में विख्यात हो चुका था और इसके उत्सव में पूरे देश भर से ऋषि भक्त आर्यसमाजी सम्मिलित होते थे। समय के साथ इसमें गुणवर्धन होने के स्थान गुण-ह्रास हुआ है। आजकल के गुरुकुल का उत्सव देखकर उन दिनों के उत्सव की कल्पना भी नहीं की जा सकती। गुरुकुल कांगड़ी के इस उत्सव में 15 हजार लोगों की श्रोतृ मण्डली के सम्मुख आपने वैदिक विषयों पर अपने प्रभावशाली व्याख्यान दिये। आपके व्याख्यानों को सुनकर आर्य जनता सहित अन्य विद्वानों पर आपकी धाक जम गई। आर्यजगत के सभी छोटे व बड़े विद्वानों का ध्यान आपकी ओर आकर्षित हुआ। उन्हें लगा कि यह विद्वान वैदिक धर्म को बुलन्दियों तक पहुंचा सकता है। इस घटना के बाद आप शेष जीवन भर आर्यसमाज के शीर्षस्थ विद्वानों में सम्मिलित रहे। गुरुकुल के वार्षिकोत्सव में मियां अब्दुल गफ्फूर से शुद्ध होकर वैदिक धर्मी बने सज्जन पं. धर्मपाल भी मौजूद थे। उत्सव के बाद गुरुकुल के आयोजन पर अपने विस्तृत लेख में उन्होंने पं. गणपति शर्मा के व्याख्यान की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए लिखा कि वह उनके व्यक्तित्व के विषय में शब्दों में कुछ कहने में असमर्थ हैं। उन्होंने पाठकों को कहा कि पं. गणपति शर्मा की ज्ञान प्रसूता वाणी की महत्ता का अनुमान उसे स्वयं सुनकर ही लगाया जा सकता है, शब्दों में उसको बता पाना सम्भव नहीं।

**पं. गणपति शर्मा जी की एक विशेषता यह भी थी कि वह बिना लाउडस्पीकर के 15-15 हजार की संख्या में 4-4 घंटों तक धाराप्रवाह व्याख्यान करते थे।** उनकी विद्वता एवं व्याख्यान कला में रोचकता के कारण श्रोता उनका व्याख्यान सुनकर थकते नहीं थे। पंडित जी का व्यक्तित्व व जीवन महान था जिसके कारण प्रत्येक श्रोता उनके प्रति श्रद्धा का भाव रखता था और उनका एक-एक शब्द उसके हृदय को प्रभावित व आनन्दित करता था। गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक, अपने समय के देश और आर्यसमाज के प्रसिद्ध नेता, सुधारक और शिक्षा जगत की महान विभूति स्वामी श्रद्धानंद ने उनके विषय में लिखा है कि लोगों में पंडित गणपति शर्मा जी के प्रति अगाध श्रद्धा का कारण उनकी केवल मात्र विद्वता एवं व्याख्यान कला ही नहीं अपितु उनका शुद्ध एवं उच्च आचरण, सेवाभाव व चरित्र है। उनके इन व्यक्तिगत गुणों का ही प्रभाव था कि वह जिस विपक्षी विद्वान से शास्त्रार्थ व चर्चा करते थे, वह उनका सुहृद मित्र वा प्रशंसक बन जाता था।

सन् 1904 में अविभाजित भारत के पश्चिमी पंजाब के पसरूर नगर में पादरी ब्राण्डन ने एक सर्व धर्म सम्मेलन का आयोजन किया। आर्यसमाज की ओर से इस कार्य में पं. गणपति शर्मा सम्मलित हुए। पंडित जी की विद्वता एवं सद्व्यवहार का पादरी ब्राण्डन पर गहरा प्रभाव पड़ा और वह पं. जी के मित्र एवं प्रशंसक हो गये। इसके बाद उन्होंने जब भी कोई आयोजन किया वह आर्यसमाज जाकर पं. गणपति को भेजने का आग्रह करते थे। ऐसे ही अनेक उदाहरण और हैं जब प्रतिपक्षी विद्वान शास्त्रार्थ में पराजित होने पर भी उनके सद्व्यवहार की प्रशंसा करते थे।

एक ओर जहां पंडित जी के व्यक्तिगत आचरण में सभी मतों के व्यक्तियों के प्रति आदर का भाव था, वहीं धर्म प्रचार में भी वह सदैव तत्पर रहते थे। **सन् 1904 में उनके पिता एवं पत्नी का अवसान हुआ। पिता की अन्त्येष्टि सम्पन्न कर आप धर्म प्रचार के लिए निकल पड़े और चुरू से कुरुक्षेत्र आ गये जहां उन दिनों सूर्यग्रहण पर मेला लगा था।** अन्य मतावलम्बियों ने भी यहां धर्म प्रचार कि अपने-अपने शिविर लगाये थे। इस मेले पर **‘पायनियर’** पत्रिका में एक योरोपियन लेखक का लेख छपा जिसमें उसने स्वीकार किया कि मेले में आर्यसमाज का प्रभाव अन्य प्रचारकों से अधिक था। इसका श्रेय भी पं. गणपति शर्मा को है जो यहां वैदिक धर्म प्रचार के प्राण थे। **धर्म प्रचार की धुन के साथ पण्डित जी त्याग-वृति के भी धनी थे। इसका उदाहरण उनके जीवन में तब देखने को मिला जब पत्नी के देहान्त हो जाने पर उसके सारे आभूषण लाकर गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर को दान कर दिए।**

पंडित जी ने देश भर में पौराणिक, ईसाई, मुसलमान और सिखों से अनेक शास्त्रार्थ किये एवं वैदिक धर्म की मान्यताओं को सत्य सिद्ध किया। **12 सितम्बर, 1906 को श्रीनगर (कश्मीर) में महाराजा प्रताप सिंह जम्मू कश्मीर की अध्यक्षता में पं. गणपति शर्मा ने पादरी जानसन से शास्त्रार्थ किया। पादरी जानसन संस्कृत भाषा एवं दर्शनों का विद्वान था। उसने कश्मीरी पण्डितों को शास्त्रार्थ की चुनौती दी थी परन्तु जब कोई तैयार नहीं हुआ तो पादरी महाराजा प्रताप सिंह जी के पास गया और कहा कि आप राज्य के पण्डितों से मेरा शास्त्रार्थ कराईये अन्यथा उसे विजय पत्र दीजिए।** महाराज के कहने पर भी राज्य का कोई सनातनी पौराणिक पण्डित शास्त्रार्थ के लिए तैयार नहीं हुआ, कारण उनमें वेदादि शास्त्रों का ज्ञान व योग्यता न थी। इस स्थिति धर्म विश्वासी महाराजा चिन्तित हो गए। इसी बीच महाराजा को कहा गया कि एक आर्यसमाजी पंडित श्रीनगर में विराजमान है। वह पादरी जानसन का दम्भ चूर करने में सक्षम हैं। **राज्य पण्डितों ने पं. गणपति शर्मा का आर्य समाजी होने के कारण विरोध किया जिस पर महाराजा ने पण्डितों को लताड़ा और शास्त्रार्थ की व्यवस्था कराई।** पं. गणपति शर्मा को देख कर पादरी जानसन घबराया और बहाने बनाने लगा परन्तु महाराजा की दृणता के कारण उसे शास्त्रार्थ करना पड़ा। शास्त्रार्थ में पण्डित जी ने पादरी जानसन के दर्शन पर किए गए प्रहारों का उत्तर दिया और उनसे कुछ प्रश्न किए। शास्त्रार्थ संस्कृत में हुआ। सभी राज पण्डित शास्त्रार्थ में उपस्थित थे। पण्डित गणपति शर्मा के शास्त्रार्थ में किये गये पादरी के प्रश्नों के समाधानों और पंडित जी के पादरी जानसन द्वारा अनुत्तरित प्रश्नों से राज पण्डित विस्मित हुए। उन्हें जहां पण्डित गणपति शर्मा के प्रगाढ़ शास्त्र ज्ञान की जानकारी हुई वहीं अपनी अज्ञता पर दुःख व लज्जा का भी अनुभव हुआ। **अगले दिन 13 सितम्बर को भी शास्त्रार्थ जारी रहना था परन्तु पादरी जानसन चुपचाप खिसक गये। इस विजय से पण्डित गणपति शर्मा जी की कीर्ति पूरे देश में फैल गई। महाराज प्रताप सिंह जी को भी इससे राहत मिली। उन्होंने पंडित जी का यथोचित आदर सत्कार कर उन्हें कश्मीर आते रहने का निमन्त्रण दिया।**

वृक्षों में मनुष्य के समान सत्-चित् जीवात्मा है या नहीं, इस विषय पर पंडित गणपति शर्मा जी का आर्यजगत के सुप्रसिद्ध विद्वान, शास्त्रार्थ महारथी और गुरुकुल महाविद्यालय के संस्थापक स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती से 5 अप्रैल सन् 1912 को गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर में शास्त्रार्थ हुआ था। दोनों विद्वानों में परस्पर मैत्री सम्बन्ध थे। यद्यपि इस शास्त्रार्थ में हार-जीत का निर्णय नहीं हुआ फिर भी दोनों ओर से जो प्रमाण, युक्तियां एवं तर्क दिये गये, वह महत्वपूर्ण थे एवं जिज्ञासु व स्वाध्यायशील श्रोताओं के लिए उपयोगी एवं ज्ञानवर्धक थे।

पंडित गणपति शर्मा जी का जीवन मात्र 39 वर्ष का रहा। वह चाहते थे कि वह व्याख्यान शतक नाम से पुस्तकों की एक श्रृखला तैयार करें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने मस्जिद मोठ में एक मुद्रण प्रेस भी स्थापित किया था। वेद प्रचार कार्यों में अत्यन्त व्यस्त रहने व अवकाश न मिलने के कारण वह मात्र एक पुस्तक ही लिख सके जिसका नाम है **‘ईश्वर भक्ति विषयक व्याख्यान।’** काश उनका जीवन कुछ लम्बा होता और वह कुछ अधिक ग्रन्थ हमें दे पाते। विद्वानों की अल्पकाल व अल्पायु में मृत्यु का ईश्वरीय विधान समझना असम्भव है।

पंडित जी ने देश भर में घूम कर वैदिक धर्म का प्रचार किया। 103 डिग्री ज्वर होने की स्थिति में भी आप व्याख्यान दिया करते थे। जीवन में रोग होने पर आप कभी विश्राम नहीं करते थे। इसका परिणाम आपके अपने और देश व समाज के हित में अच्छा नहीं हुआ। ऐसी परिस्थितियों में जिस अनहोनी की आशंका होती है वही हुई। **27 जून सन् 1912 को मात्र 39 वर्ष की आयु में आपका निधन हो गया।** पण्डित जी ने अपने जीवन में लोक, पुत्र व वित्त एषणाओं को त्याग कर स्वयं को वैदिक धर्म के प्रचार के लिए समर्पित किया था। आज देश व समाज में हम पण्डित जी के अनुरुप भावनाओं का लोप पाते हैं। आर्यममाज के विद्वानों व नेताओं को विचार करना चाहिये कि पंडित गणपति शर्मा जैसे विद्वान कैसे व किस प्रकार बनाये जा सकते हैं। वर्तमान में तो प्रत्येक युवा व वृद्ध धनोपार्जन को ही जीवन का उद्देश्य बनाये हुए है। यदि ऐसा ही चलेगा तो आर्यसमाज का उत्कर्ष कठिन है। ऐसी स्थिति में स्वामी सत्यपति जी के शिष्य-प्रशिष्य आर्यसमाज के लिए आशा की किरण हैं। आर्यसमाज के विद्वानों को चाहिये कि वह अपने प्रवचनों व पत्र-पत्रिकाओं में लेखों के द्वारा आर्यसमाज के उद्देश्य की पूर्ति के लिए पूर्णतया समर्पित प्रमुख उच्च कोटि के विद्वानों व नेताओं के गौरवपूर्ण चरित्र का चित्रण किया करें जिससे प्रेरणा ग्रहण कर लोग परमार्थ के कार्यों में उत्साहित होकर श्रेय मार्ग का चयन कर सकें। यह भी बता दें लगभग सन् 1994 में दिल्ली से प्रकाशित आर्यसन्देश साप्ताहिक ने आर्यसमाज के अनेक विद्वानों यथा स्वामी रामेश्वरानन्द सरस्वती, स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती, डा. सत्यकेतु विद्यांकार, पं. बुद्धदेव विद्यालंकार आदि पर भव्य विशेषांक प्रकाशित किये थे। पं. गणपति शर्मा जी पर विशेषांक के विषय में हमें विस्मृति हो रही है। उन दिनों पत्र के सम्पादक श्री मूलचन्द गुप्त थे। उसके बाद वैसे विशेषांक प्रकाशित नहीं हुए। हम दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा से निवेदन करते हैं कि वह श्री मूलचन्द गुप्त जी के समय में आर्य महापुरुषों पर प्रकाशित विशेषांकों के पुस्तकीय संस्मरण प्रकाशित करने पर विचार करें जिससे इनका आगे भी प्रचार जारी रहे। यह श्री ज्ञातव्य है कि आर्य विद्वान डा. भवानीलाल भारतीय ने पंडित गणपति शर्मा जी का सक्षिप्त जीवन चरित्र लिखा है जो सम्प्रति अप्राप्य हो गया है।

लेख को विराम देते हुए पं. नाथूराम शंकर शर्मा की निम्न प्रेरक पंक्तियां प्रस्तुत हैं:

**“भारत रत्न भारती का बड़़भागी भक्त, शंकर प्रसिद्ध सिद्ध सागर सुमति का।**

**मोहतम हारी ज्ञान पूषण प्रतापशील, दूधन विहीन शिरो भूषण विरितिका।।**

**लोकहितकारी पुण्य कानन विहारी वीर, वीर धर्मधारी अधिकारी शुभगति का।**

**देख लो विचित्र चित्र वांच लो चरित्र मित्र, नाम लो पवित्र स्वर्गगामी ‘गणपति’ का।।”**

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**